तित्थयर

जैन भवन

वर्ष ६ अंक २ : जून १९८२

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram : PEARLMOON

Telephone : 22-4110
22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn/Carpet Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ६ : अंक २

जून १९८२

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

पुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

महावीर ने कहा था ३७

जैन अलंकार साहित्य ४५

सत्य की उपलब्धि ५५

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ५७

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ६३

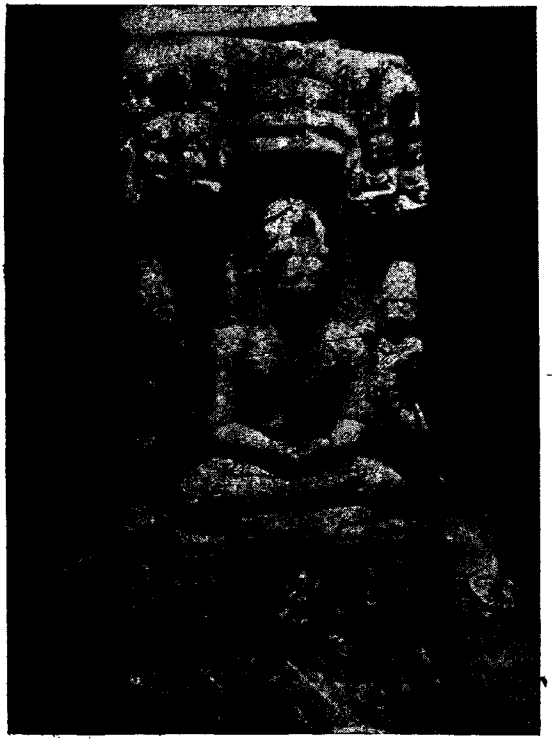

ऋषभनाथ, भैरवसिंहपुर, उड़ीसा

महावीर ने कहा था

[पूर्वानुवृत्ति]

विनय सम्बन्धी

उच्च कुल जात व्यक्ति के द्वारा
कृत होने पर भी
वह तपस्या वृथा है
जो ख्याति के लिए की जाती है।
वही तपस्या-तपस्या है
जिसके विषय में कोई नहीं जानता
अतः कभी अपना प्रचार नहीं करना।

ज्ञान और तपस्या,
गोत्र और कुल का
अहंकार जो छोड़ सकता है
वही यथार्थ ज्ञानी है,
वही उत्तम अधिकारी है।

धर्म में सुदृढ़ होकर
अहंकार परित्याग करो—
तभी तुम अनुभव करोगे
उन महर्षि की अवस्था
जो गोत्र व कुल से
बहुत ऊपर हैं।

मूल से स्कन्ध,
स्कन्ध से शाखा-प्रशाखा,
पत्र, फूल, फल, रस,
ठीक उसी प्रकार धर्म है—
विनय जिसका मूल है,
मोक्ष जिसका रस है।

विनय के द्वारा ही
वह सहज ज्ञान प्राप्त करता है,
जीवन में ख्याति
और अन्ततः निर्वाण प्राप्त करता है।

विनय और शास्त्र कथन में,
तपस्या और चारित्र में
जिसकी श्रद्धा है
वही स्वयं का जय कर सकता है।

आत्मा सम्बन्धी
संयम पालन
बालू भक्षण-सा नीरस है
और असिधारा पर
चलने की भाँति दुष्कर है
जो दुर्बल चित्त है
उसके लिए
थैले में वायु भरने की तरह
बहुत कठिन है।

फिर भी जो स्वयं को
जय कर सकता है
वह पाँचों इन्द्रियों एवं
क्रोध मान माया और लोभ पर
विजय पाता है।

अतः अपनी शक्ति और सामर्थ्य,
श्रद्धा और धारणा,
स्थान और काल से अवगत होकर
आत्म जय में तत्पर हो जाओ।

युद्ध में जो हजार-हजार
शत्रुओं पर जय पाता है
उससे अधिक जो स्वयं पर
जय पाता है वही श्रेष्ठ है।

बाहरी शत्रु से
युद्ध कर क्या लाभ ?
स्वयं से युद्ध करो ।
स्वयं से युद्ध कर
जो जयी होता है
वह सुखी होता है ।

स्वयं को जय करो
कारण स्वयं को जय करना
सबसे अधिक कठिन है ।
जो स्वयं पर जय लाभ करता है
इस और अगले जीवन में
वही सुखी होता है ।

दूसरे के द्वारा बन्धन
और मृत्यु की अपेक्षा
संयम के द्वारा
स्वयं को जय करना श्रेष्ठकर है ।

अण्डे से जैसे बगुला उत्पन्न होता है
बगुले से अण्डा,
उसी प्रकार मोह से तृष्णा उत्पन्न होती है
तृष्णा से मोह ।

कर्म के मूल में हैं
राग और द्वेष,
मोह से इसीलिए कर्म का उद्भव होता है ।
कर्म जन्म और मृत्यु का कारण है,
जन्म और मृत्यु ही तो दुःख है ।

जिसे मोह नहीं उसे दुःख नहीं,
उसे मोह नहीं जिसे तृष्णा नहीं,
जिसे लोभ नहीं उसे तृष्णा नहीं,
उसे लोभ नहीं जो अकिंचन है ।

अकिंचन बनो,
जो देह का प्रीतिकर है
उसका परिहार करो,
जय करो तृष्णा को,
तभी देखोगे तुम्हे दुःख नहीं,
राग और द्वेष करो जय
तभी अनुभव करोगे आनन्द।

जिसकी किसी से ममता नहीं
उसने जय किया है ममत्व,
जिसे ममत्व नहीं
वही है यथार्थ मुनिवर।

वह निर्मम और निरहंकार है,
निःसंग और कषायहीन है,
त्रस और स्थावर
समस्त जीवों पर वह समदर्शी है।

वह लाभ और अलाभ में,
दुःख और सुख में,
जीवन और मृत्यु में,
निन्दा और प्रशंसा में,
सर्वदा रहता है सम।

वह आहार और अनाहार में,
सुख में और दुःख में,
इहलोक और परलोक में,
सर्वदा सम है।

सम है इसीलिए
शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध के
विषय से
तुम्हारे मन को
हटा लो।

शब्द कान का विषय है,
शब्द जब कानों में आ पड़ता है
तुम सुने बिना नहीं रह सकते,
इसीलिए जो सुनते हो
उससे परिहार करो
तुम्हारा अनुराग और विराग।

रूप आँखों का विषय है,
रूप जब आँखों में आ पड़ता है
तब बिना देखे तुम रह नहीं सकते,
इसीलिए जो देखते हो
उससे परिहार करो
तुम्हारा अनुराग और विराग।

गन्ध नाक का विषय है,
गन्ध जब नाक में आ पड़ती है
तब सूँघे बिना तुम नहीं रह सकते,
इसीलिए जो नाक का विषय है
उससे तुम परिहार करो
तुम्हारा अनुराग और विराग।

रस जिह्वा का विषय है,
रस जब जीभ में आ पड़ता है
तब तुम स्वाद लिए बिना नहीं रह सकते,
इसीलिए जिसका तुम आस्वादन करो
उससे परिहार करो
तुम्हारा अनुराग और विराग।

स्पर्श त्वचा का विषय है,
स्पर्श का विषय जब त्वचा के सम्पर्क में आता है
तब तुम स्पर्श करे बिना नहीं रह सकते,
इसीलिए जिसे स्पर्श करते हो
उससे परिहार करो
तुम्हारा अनुराग और विराग।

राग और द्वेष
या अनुराग विराग ही
जब कर्म की जड़ है,
तब जो इनका परिहार करता है
वह संसार चक्र में आवर्त्तित नहीं होता।

अहिंसा सम्बन्धी

अपना जीवन सभी को प्रिय है,
वे भी तुम्हारी ही तरह
सुख-दुःख अनुभव करते हैं।
अतः किसी की हत्या मत करो,
उनकी भय और बैर से रक्षा करो।

समस्त जीव
जीना चाहते हैं,
मरना कोई नहीं चाहता।
अतः जीव हत्या पाप है,
सज्जन जीव हत्या नहीं करते।

जान में या अनजान में
स्थावर और त्रस
किसी भी प्राणी की
हत्या करो मत, करवाओ मत।

जो स्वयं हत्या करता है,
या अन्य से करवाता है,
या हत्या का अनुमोदन करता है,
वह बैर की वृद्धि करता है।

पृथ्वी के छोटे-बड़े-प्राणी को
जो अपने जैसा समझता है
वह पृथ्वी को जानता है,
वही ज्ञानी है जो स्वयं को
प्रमादियों के मध्य भी संयत रखता है।

सत्य सम्बन्धी

जो संयत है
वे जो देखते हैं वही बोलते है,
वे अतिशयोक्ति नहीं करते,
अस्पष्ट कुछ नहीं रखते ।

सीधा-सादा बोलते है,
सम्पूर्ण बोलते हैं,
बोध गम्य कर बोलते हैं,
उसमें आवेग या उच्छ्वास नहीं रहता ।

मैं करूँगा,
मैं बोलूँगा,
मेरा होगा,
यह सब आपात सत्य है—
यह सत्य भी जो बोलता है
उसे पाप लगता है ।
अतः जो एकदम झूठ बोलते हैं
वे और अधिक पाप करते हैं ।

ज्ञानियों ने
मिथ्या बोलना गर्हित समझा है,
कारण वह मनुष्य के मन में
अविश्वास की सृष्टि करता है,
अतः मिथ्या का सर्वदा परिहार करो ।

अपने लिए या अन्य के लिए,
भय से या क्रोध से,
मिथ्या मत बोलो
और किसी से बुलवाओ भी मत ।

यहाँ तक कि सत्य भी
जो दूसरे को आघात पहुँचाए
मत बोलो ।

अन्धे को अन्धा,
लंगड़े को लंगड़ा,
बहरे को बहरा बोलना भी
दूषणीय है।

सन्तोष सम्बन्धी

जैसे-जैसे लाभ होता जाता है
वैसे-वैसे लोभ,
लोभ लाभ के संग बढ़ता रहता है।
प्रयोजनीय था मात्र
दो मासा सोना,
अब लाख मासे से भी सन्तोष नहीं।

जिसे सन्तोष नहीं
उसे सोने-चाँदी के पहाड़ भी
परितृप्त नहीं कर सकते,
तृष्णा आकाश-सी असीम है।

धन-धान्य भरी पृथ्वी भी
यदि किसी को दे दी जाय
फिर भी वह सन्तुष्ट नहीं होगा
अतः संतोष को अनुशीलन करो।

प्रतिमास
हजार-हजार गाएँ जो दान करता है
उससे जो संतोष का
अनुशीलन करता है
वही श्रेष्ठ है।

[क्रमशः

जैन अलंकार साहित्य

पं० अमृतलाल शास्त्री

भारतीय साहित्य में अलंकार शास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान है। ऋग्वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें भी अलंकारों का प्रयोग[1] प्रचुर मात्रा में मिलता है। अलंकार संक्षेप में दो प्रकार के होते हैं—शब्दालंकार और अर्थालंकार। यमक और अनुप्रास आदि शब्दालंकार हैं, और उपमा आदि अर्थालंकार। ऋग्वेद में दोनों प्रकार के अलंकारों का उपयोग किया गया है। "अभ्रातेव—" इत्यादि मन्त्र में यास्क ने चार उपमाएँ बतलाई हैं। यों अलंकार शास्त्र की रचना बाद में हुई, किन्तु भाषा के साथ उसके भूषण अलंकार का रहना स्वाभाविक है। अतः ऋग्वेद में अलंकारों का प्रयोग आश्चर्यजनक नहीं। अनुसंधान किया जाए तो ऋग्वेद के समान उसके बाद के ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, सूत्र, स्मृति, पुराण और दर्शन आदि साहित्य में भी अनुप्रास आदि शब्दालंकार व उपमा आदि अर्थालंकार मिल सकते हैं।

प्राचीन साहित्य का अध्ययन कर आचार्य भरत (प्रथम शती ई०) ने अपने नाट्य-शास्त्र में उपमा, रूपक, दीपक और यमक इन चार अलंकारों का निरूपण किया है। इनके बाद ईसा की छठी शताब्दी से सत्तरहवीं तक भामह, दण्डी, वामन, उद्भट, रूद्रट, मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ और पण्डितराज जगन्नाथ आदि विद्वानों ने अनेक आलंकारिक ग्रन्थों की रचना की है। अब तक कुल सात सौ अलंकार ग्रन्थों का पता अनुसंधान करने वाले विद्वानों को लग चुका है, जिनमें अकबर शाह शाहि शृंगार दर्पण, अलंकार कौमुदी, अलंकार कौस्तुभ, अलंकार प्रदीप, अलंकार मंजूषा, अलंकार मणिहार, अलंकार महोदधि, अलंकार मुक्तावली, अलंकार रत्नाकर, अलंकार शेखर, अलंकार संग्रह, अलंकार सर्वस्व, अलंकार सार मंजरी, अलंकार सूत्र, अलंकृति

---

[1] यमक : अवत्मनो भरते केत वेदा अवत्मनो भरते फेनमुदन ॥ (ऋ० १/१०४/३, पृ० ६३५, पूना प्रकाशन)।

अनुप्रास : इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय ॥ (ऋ० १/११४/६, पृष्ठ ७०४, पूना प्रकाशन)।

उपमा : अभ्रातेव पुंसः एति प्रतीची····(ऋ० १/१२४/७, पृ० ७८८, पूना प्रकाशन)

मणिमाला, उज्ज्वल नीलमणि, कर्णभूषण, कवि कल्पलता, काव्य दर्पण, काव्य दीपिका, काव्य निर्णय, काव्य-परीक्षा, काव्यालंकार, काव्य मीमांसा, काव्य प्रकाश, काव्यानुशासन, चन्द्रालोक, ध्वन्यालोक, साहित्यदर्पण, नाट्यदर्पण, नाट्यशास्त्र, अलंकार चिंतामणि और रस गंगाधर आदि सो से ऊपर प्रकाशित हो चुके हैं।

उपयोग :

मानव मात्र को शिक्षा देने के लिए साहित्य की रचना की गई है। किन्तु साहित्य का मर्म हर एक मनुष्य नहीं जान सकता। इसी साहित्यिक मर्म को जानने के लिए अलंकार शास्त्र का उपयोग अत्यन्त आवश्यक है। श्री राजशेखर ने लिखा है—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त छंदोविचिति और ज्योतिष ये वेद के ६ अंग है। उपकारक होने से अलंकार शास्त्र इसका सातवाँ अंग है। बिना अलंकार समझे वेदों का अर्थज्ञान नहीं हो सकता।[२] जैसे 'सुन्दर पंखों वाले, एक साथ रहने वाले और परस्पर मित्रता रखने वाले दो पक्षी एक ही वृक्ष पर निवास करते हैं। दोनों में से एक स्वादयुक्त फलों को खाता है और दूसरा बिना कुछ खाये ही प्रकाशमान रहता है।' इस ऋग्वेद के मन्त्र का अर्थ अतिशयोक्ति अलंकार का स्वरूप समझे बिना ज्ञात नहीं हो सकता। जहाँ उपमेय की चर्चा किए बिना उपमान की चर्चा होती है, वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है। उक्त मन्त्र में जीवात्मा और परमात्मा की चर्चा न करके दो पक्षियों की चर्चा की गई है तथा शरीर की चर्चा न करके वृक्ष की चर्चा की गई है।

जैन अलंकार शास्त्र :

वैदिक साहित्य की तरह जैन साहित्य में भी भगवान महावीर के समय से अलंकारों का प्रयोग होता चला आ रहा है। "णिद्दोसं सारमंतं च हेउजुत्त-मलंकियं" इत्यादि अनुयोगद्वार सूत्र के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि प्राचीन

---

[२] "शिक्षा, कल्पो, व्याकरणं, निरुक्तं, छन्दोविचितिः, ज्योतिषं, च षडंगानि" —इत्याचार्या। "उपकारकत्वादलंकारः सप्तममंगम्" इति यायावरीयः ॥
(क० मी०, अ० २)

ऋतेच तत्स्वरूप परिज्ञानाद्वेदार्थानवगतिः। यथा :
"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नयो अभिचाकशीति ॥"
(ऋ० १/१६४/२०, पृ० ६६०, पूना प्रकाशन)

युग के जैन आचार्य अलंकार शास्त्र की परिभाषाओं से परिचित थे। विक्रम की दूसरी-तीसरी शताब्दी में जैन आचार्य श्री समन्तभद्र[३] ने अपनी कृति 'स्तुतिविद्या' में—जिसका अपर नाम 'जिनशतकम्' है—आदि से अन्त तक 'चित्र' [४]अलंकार का उपयोग किया है।

जैन साहित्य बहुत विशाल है। अभी तक इसका पूरा प्रकाशन नहीं हो सका है। यदि पूरा जैन साहित्य प्रकाशित हो जाए तो वह भारतीय साहित्य के आधे भाग के बराबर होगा। जैन साहित्य की भाषा अलंकारों से अलंकृत है, अतः उसके मर्म को समझने के लिए अलंकार शास्त्रों का परिज्ञान नितान्त आवश्यक है। इसी की पूर्त्ति के लिए अनेक जैन आचार्यों ने महत्वपूर्ण अलंकार ग्रन्थों की रचना की।

प्रथमतः जैन विद्वानों ने अलंकार ग्रन्थों की रचना प्राकृत भाषा में की। जैसलमेर-भण्डार की ग्रन्थ सूची से पता चलता है कि किसी जैन विद्वान ने प्राकृत भाषा में "अलंकार दर्पण" (सं० ११६१) नामक ग्रन्थ लिखा था, जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। अभी तक जितने जैन अलंकार ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, उनमें निम्नलिखित ग्रन्थ बहुत ही महत्वपूर्ण हैं—वाग्भटालंकार (१२वीं शती), काव्यानुशासन-हेमचन्द्र (१२वीं शती), काव्य कल्पलता-वृत्ति (१३वीं शती), अलंकार महोदधि (१३वीं शती), नाट्य दर्पण (१३वीं शती), अलंकार चिन्तामणि (१४वीं शती), काव्यानुशासन-वाग्भट्ट (१४वीं शती) और काव्यालंकार सार (१५वीं शती)।

---

३ आचार्य समन्तभद्र के समय के सम्बन्ध में विद्वान एक मत नहीं हैं। पं० महेन्द्र कुमार जी के अनुसार उनका समय ई० की ५वीं और ७वीं शताब्दी के मध्य होना अधिक सम्भव है। देखिए न्या० कु० च०, द्वि० भाग, प्रस्ता०, पृ० २७।

४ मुरजबन्ध : श्रीमज्जिनपदाभ्याशं प्रतिपद्यागसां जये।
कामस्थान प्रदानेशं स्तुतिविद्यां प्रसाधये ॥
(स्तुतिविद्या, श्लोक १)

चक्रबन्ध : गत्वैकस्तुतमेव वासमधुना तं येच्युतं स्वीशते
यन्नत्यैति सुशर्म पूर्णमधिकां शान्तिं व्रजित्वाध्वना।
यद्भक्त्या शमिताकृशाघमरुजं तिष्ठेज्जनः स्वालये
ये सद्भोगकदायतीव यजते ते मे जिनाः सुश्रिये ॥
(स्तुतिविद्या, श्लोक ११६)

परिचय :

वाग्भटालंकार : वाग्भटालंकार के प्रणेता श्री वाग्भट्ट हैं। इनके पिता का नाम "सोम"[५] था। और ये अणहिल्ल पाटन (गुजरात) के राजा श्री जय सिंह, जो राजा कर्णदेव के पुत्र थे, के मन्त्री थे। इसका उल्लेख सिंह देव गणी ने "बंभंड" इत्यादि चतुर्थ परिच्छेद के १४८वें श्लोक की व्याख्या करते हुए वाग्भटालंकार में किया है।[६] प्रभाचन्द्र मुनि ने अपने "प्रभावक चरित्र" में भी यह बात लिखी है।[७] जयसिंह का निश्चित समय बारहवीं शती है, अतः वाग्भट्ट का भी समय १२वीं शती है। ये हेमचन्द्र आचार्य के समकालीन हैं।[८]

वाग्भटालंकार में पाँच परिच्छेद हैं जिनमें क्रमशः २७, २६, १७, १५३ और ३३ कुल मिलाकर २५६ श्लोक हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ बहुत छोटा है। किन्तु इसमें संक्षेप से कवि-शिक्षा, दोष, गुण, अलंकार और रस इन अलंकार शास्त्र में वर्णनीय विषयों पर प्रकाश डाला गया है। 'गागर में सागर' वाली उक्ति को वाग्भट्ट ने इस कृति में पूर्ण रूप से चरितार्थ किया है।

वाग्भट्ट अलंकार-शास्त्र के मर्मज्ञ थे। इन्होंने अपने पूर्ववर्ती अलंकारिकों के प्रामाणिक ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया था। इन्होंने अपनी कृति में किसी भी ग्रन्थकार का खण्डन-मण्डन नहीं किया। सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि ये समन्वयवादी थे। इसका कुछ आभास इनकी काव्य परिभाषा से लग जाता है :

साधुशब्दार्थसन्दर्भं गुणालंकारभूषितम्।
स्फुटरीतिरसोपेतं काव्यं कुर्वीत कीर्तये॥ १।२

---

५ वग्भण्ड सुत्तिसपुडमोत्तिअमणिणोप्पहासमूह व्व।
सिरिबाहडत्ति तणओ आसि बुहो तस्स सोमस्स॥ वाग्भटालंकार, ४।१४८।

६ "इदानीं ग्रन्थकार इदमलंकारकर्तृत्वख्यापनाय वाग्भटाभिधस्य महाकवेर्महामात्यस्य तन्नाम गाथयैकया निदिशतिः।"

७ अणहिल्लपुरं प्राप क्ष्मापः प्राप्त जयोदयः।
महोत्सव प्रवेशस्य गजारूढ़ सुरेन्द्रवत॥
वाग्भटस्य विहारं स ददर्श दग्रसायनम्।
अन्येद्युर्वाग्भटामात्यं धर्मांत्यन्तिक वासनः॥

८ प्रो० बलदेव उपाध्याय ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में किसी भ्रमवश वाग्भट्ट का समय १५वीं शती का पूर्वार्द्ध लिखा है।

अर्थात्—सुन्दर शब्द और अर्थ इन दोनों से काव्य के शरीर का निर्माण होता है। काव्य का शरीर गुण और अलंकारों से विभूषित होता है। काव्य शरीर में रीति और रस का पुट रहता है। इसका निर्माण कीर्ति की कामना से करना चाहिए।

वाग्भट के पूर्ववर्त्ती विद्वानों में दण्डी ने अपने काव्यादर्श में केवल शब्द को ही काव्य बतलाया था :

शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली। —काव्यादर्श, १-१०

भामह ने अपने भामहालंकार में शब्द और अर्थ दोनों को काव्य माना था :

शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्''''।१।१६

भामह दण्डी के पूर्ववर्त्ती हैं। दण्डी को भामह का मत मान्य प्रतीत नहीं हुआ। दण्डी का अभिप्राय यह था कि शब्द के साथ अर्थ तो रहता ही है, अतः शब्द के साथ अर्थ जोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं।[९] किन्तु दण्डी के बाद के विद्वानों ने दण्डी के मत को न मानकर भामह के ही मत को स्वीकार किया।

वामनाचार्य ने लिखा है—गुण और अलंकारों से विभूषित शब्दार्थ को काव्य कहते हैं :

काव्य शब्दोऽयं गुणालंकार संस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते।

—काव्यालंकार सूत्र वृत्ति, १।१।१

इसी तरह रुद्रट ने भी शब्दार्थ को काव्य बतलाया है :

ननु शब्दार्थौ काव्यम्''''।—काव्यालंकार २।१

इनके बाद वाग्देवतावतार श्री मम्मट ने अपने काव्य प्रकाश में लिखा है—निर्दोष, सगुण और सालंकार तथा कहीं निरलंकार (जहाँ रस आदि की सत्ता हो) शब्दार्थ को काव्य कहते हैं :

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृतिः पुनः क्वापि।—काव्यप्रकाश १।१

इस तरह काव्य के स्वरूप-निरूपण से स्पष्ट है कि प्राचीन आचार्यों की दो तरह की विचारधाराएँ थीं।

श्री वाग्भट ने अपने पूर्ववर्त्ती सभी आचार्यों के मत का सूक्ष्म अध्ययन कर प्रामाणिक विचारधारा को अपनाया। इसी तरह कुछ विद्वान "रीतिरात्मा

---

[९] दंडी ने अर्थ को अप्रधान माना है, अनावश्यक नहीं। पंडितराज जगन्नाथ ने दण्डी का मत मान्य किया है, और बहुत बलवान् युक्तियों के सहारे केवल 'शब्द' को ही काव्य का शरीर माना है।

काव्यस्य" कहकर रीति को काव्य की आत्मा बतलाते हैं और कुछ विद्वान "रस एवात्रजीवितम्" लिखकर काव्य की आत्मा रस को बतलाते हैं एवं वक्रोक्ति जीवितकार ने "वक्रोक्ति काव्य जीवितम्" लिखकर वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा बतलाया है। वाग्भट ने काव्य में रीति, रस और वक्रोक्ति इन सभी को यथायोग्य स्थान देकर अपनी समन्वयवादिनी बुद्धि का समुचित उपयोग किया। वाग्भट ने वक्रोक्ति को शब्दालंकार माना है न कि काव्यात्मा :

चित्रं वक्रोक्त्यनुप्रासौ यमकं ध्वन्यलंक्रिया।—वाग्भटालंकार, ४।२

चित्र, वक्रोक्ति, अनुप्रास और यमक के चार शब्दालंकार हैं।

जिन विषयों पर अन्य आलंकारिकों ने प्रकाश डाला है, उन्हीं पर वाग्भट ने अपने ढंग से नूतन प्रकाश डालकर अपनी मौलिक बुद्धि का परिचय दिया है।

अन्य आलंकारिकों ने प्रतिभा को काव्य का हेतु बतलाया है, किन्तु यह किसी ने नहीं बतलाया कि अभिनव कवि को अर्थ कैसे सूझे। यों अभिनव कवि के काव्य के लिए भी प्रतिभा ही हेतु है। किन्तु अभिनव होने के कारण उसे कुछ विशेष साधनों की आवश्यकता पड़ना स्वाभाविक है। इसीलिए वाग्भट लिखते हैं—काव्य निर्माण उस समय करें, जब चित्त प्रसन्न हो। चित्त प्रसन्न होने पर भी हर समय कविता उतनी अच्छी नहीं बन सकती, जितनी प्रभात के समय। अतः मन की प्रसन्नता के होने पर प्रभात के समय कविता के योग्य अर्थ आसानी से सूझता है। पर चित्त की प्रसन्नता और प्रभात की मंगल बेला के साथ उद्योग भी करना चाहिए। किन्तु उद्योग भी तभी सफल हो सकता है, जब अनेक शास्त्रों का परिशीलन किया हो। यही सब सोचकर वाग्भट ने काव्य के योग्य अर्थ की सूझ के लिए प्रतिभा के साथ चित्त की प्रसन्नता, प्रभात का समय, प्रयत्न और अनेक शास्त्रों के परिशीलन को आवश्यक बतलाया है।[१०]

मनः प्रसत्ति प्रतिभाः प्रातःकालोऽभियोगिता।
अनेकशास्त्रदर्शित्वमित्यर्थालोकहेतवः॥—वाग्भट, १।१४

इसी तरह आरम्भ से अन्त तक वाग्भट के ग्रन्थ में उनकी विशिष्ट प्रतिभा का परिचय मिलता है।

वाग्भट ने पूर्वार्द्ध में लक्षण और उत्तरार्द्ध में उदाहरण देकर एक ही श्लोक में लक्षण और उदाहरण याद करने वाले छात्रों को बड़ी सरलता कर दी है। जैसे :

---

[१०] इनके पूर्ववर्त्ती माघ और राजशेखर ने भी यह बात कही है।

अपक्रमं भवेद्यत्र प्रसिद्धक्रमलंघनम् ।
यथाभुक्त्वा कृतस्नानो गुरून देवांश्च वन्दते ॥

—वाग्भटालंकार, २।२२

जहाँ लौकिक या शास्त्रीय क्रम का उल्लंघन हो, वहाँ अपक्रम नामक दोष होता है। जैसे वह सबसे पहले भोजन करता है, फिर स्नान करता है। स्नान के बाद गुरुवन्दना करता है और इसके बाद में देव वन्दना। यहाँ लौकिक और शास्त्रीय दोनों क्रमों का उल्लंघन किया गया है, अतः अपक्रम दोष है।

मल्लिनाथ ने रघुवंश आदि ग्रन्थों की टीकाओं में यत्र-तत्र वाग्भट के श्लोक उद्धृत किए हैं। अलंकार चिन्तामणिकार श्री अजितसेन ने अपने ग्रन्थ में अनेक जगह वाग्भट के श्लोक उद्धृत किए हैं। इससे वाग्भट का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है।

वाग्भट ने अन्य अलंकारिकों के समान अन्य ग्रन्थों से उदाहरण नहीं लिये, बल्कि स्वयं ही बनाये हैं। हाँ, कहीं-कहीं नेमि-निर्वाण महाकाव्य के उदाहरण अवश्य लिये हैं, खासकर यमक के प्रकरण में।

काव्यानुशासन :

काव्यानुशासन के प्रणेता आचार्य हेमचन्द्र (११वीं-१२वीं शती ई०) हैं। ये जैन-समाज के ही नहीं, बल्कि भारतीय समाज के भूषण थे। न्याय, व्याकरण, साहित्य, छन्द, अलंकार, पुराण और कोष आदि सभी विषयों पर इनका समान अधिकार था और सभी विषयों पर इन्होंने प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे हैं। इन्होंने कुल मिलाकर साढ़े तीन करोड़ श्लोक प्रमाण साहित्य की रचना की है। इनके साहित्य में निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं :

प्रमाण-मीमांसा, सिद्ध हेमशब्दानुशासन, द्वयाश्रय महाकाव्य, छन्दानुशासन, काव्यानुशासन, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, अभिधान चिन्तामणि, अनेकार्थसंग्रह, देशीनाममाला, वीतराग स्तोत्र, योग शास्त्र आदि।

वाग्भट ने भामह, दण्डी और रूद्रट की तरह अपना वाग्भटालंकार श्लोकों में लिखा था, किन्तु हेमचन्द्र ने अपना ग्रन्थ काव्यानुशासन वामन की तरह सूत्र-शैली में लिखा। काव्यानुशासन में आठ अध्याय हैं, जिनमें कुल मिलाकर २०८ सूत्र हैं। सूत्रों में अलंकार शास्त्र सम्बन्धी कविशिक्षा, अलंकार, रस, ध्वनि, गुण, दोष और साथ ही नाटकीय तत्वों पर विशद् प्रकाश डाला है। अपने सूत्रों पर "अलंकार चूड़ामणि" नाम वृत्ति और विशेष बातों को समझाने के के लिए "विवेक" की रचना भी स्वयं हेमचन्द्र ने की है। अलंकारादि सिद्धांत

को पुष्ट करने के लिए 'विवेक' में ६०० से ऊपर तथा 'अलंकार चूड़ामणि' में ७०० से ऊपर पद्य उद्धृत किये हैं। उदाहरणों का चयन हेमचन्द्र ने निष्पक्ष दृष्टि से किया है। इसीलिए काव्यानुशासन में हेमचन्द्राचार्य ने जैन ग्रन्थों के साथ जैनेतर ग्रन्थों से भी उदाहरण लिए हैं।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन में काव्य प्रकाश, ध्वन्यालोक और काव्य मीमांसा आदि ग्रन्थों से अधिक विषय का प्रतिपादन किया है। इनकी दृष्टि से जो कमी पूर्ववर्ती साहित्य में रह गयी थी, उसे इन्होंने काव्यानुशासन में पूरा कर दिया। काव्य प्रकाश में मम्मट ने नाटकीय तत्वों पर तनिक भी प्रकाश नहीं डाला, जबकि हेमचन्द्र ने इसके लिए काव्यानुशासन में एक पूरा का पूरा (अन्तिम) अध्याय लिखा। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि हेमचन्द्र ने अपने ग्रन्थ में ध्वन्यालोक और काव्य प्रकाश से अधिक विषयों का निरूपण किया है। ध्वन्यालोककार श्री आनन्दवर्धन ने ९वीं शती में सबसे पहले ध्वनि सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। यह इनके गहन शास्त्रीय चिन्तन का परिणाम था। किन्तु महिमभट्ट आदि कुछ विद्वानों ने ध्वनि सिद्धान्त का जोरदार खण्डन किया और यह बतलाया कि व्यंजना मानने की कोई आवश्यकता नहीं। रस का ज्ञान व्यंजना से नहीं अनुमान से होता है। ११वीं शती में आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश लिखकर महिमभट्ट के सिद्धान्त का खण्डन कर आनन्दवर्धन के सिद्धान्त का मण्डन किया। मम्मर के अव्यवहित उत्तरकाल में आचार्य हेमचन्द्र ने महिमभट्ट का खण्डन कर ध्वन्यालोककार आनन्दवर्द्धन के ध्वनि सिद्धान्त का जोरदार समर्थन किया। फिर तो ध्वनि सिद्धान्त का खूब ही प्रचार बढ़ा।

ध्वनि के प्रकरण में आचार्य हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में ऐसे अनेक उदाहरण दिए हैं, जो ध्वन्यालोक और काव्य प्रकाश आदि विशिष्ट ग्रन्थों में भी नहीं मिलते। जैसे :

बहलतमा हअराई अज्ज पच्चत्थो पई घरं सुण्णं।
तह जग्गिसज्जु सज्जिय न जहा अम्हे मुसिज्जामो॥

—काव्यानु०, पृष्ठ ३६ (निर्णय सा० प्रका०)

एक नायिका, जिसका पति प्रवास में है और घर बिल्कुल सूना है, रात्रि के समय अपने पड़ोसी से कह रही है :

आज की रात्रि बहुत दुःखदायिनी है, क्योंकि चारों ओर अन्धेरा छाया हुआ है, पतिदेव बाहर गए हुए हैं और घर सूना है। इसलिए हे पड़ोसी, आज

जागते रहना, जिससे हमारी और तुम्हारी चोरी न हो जाए। इस विधिवाक्य में अन्य विधि व्यंग है—तुम निर्भय होकर मेरे पास आ जाओ।[११]

कहीं वाच्य से, जो न तो विधि परक हो और न निषेध परक, निषेध सूचक व्यंग्य निकलता है। जैसे :

जीविताशाबलवती धनाशा दुर्बला मम।
गच्छ वा तिष्ठ वा पान्थ स्वावस्था तु निवेदिता॥
—काव्यानु०, पृष्ठ ३७ (निर्णय सा० प्रका०)

प्रवास के लिए उद्यत हुए पति को रोकने के लिए पत्नी कह रही है—

हे पान्थ! मुझे अपने जीवन में जितनी आसक्ति है, उतनी धन में नहीं। मुझे धन से जीवन प्यारा है। (अतः मैं जीवन देकर धन लेना पसन्द नहीं कर सकती)। अब आप जाएँ या रुकें, मैंने अपनी अवस्था आपको बतला दी है। (आपके बिना मेरा जीवित रहना कठिन है)।

यहाँ पति के जाने या न जाने का विधान नहीं किया गया है। वाच्यार्थ से हाँ या ना दोनों में से किसी एक का भी बोध नहीं होता, किन्तु व्यंग्य रूप से यह प्रतीत हो रहा है कि पत्नी अपने पति को रोकना चाहती है।[१२] आपको मेरा उतना ख्याल नहीं जितना यात्रा का; यह भाव प्रकट करने के लिए पति को 'पान्थ' पद से सम्बोधित किया गया है। इत्यादि सैकड़ों ऐसे उदाहरण हैं, जिनसे हेमचन्द्र की मौलिक प्रतिभा का परिचय मिलता है। अलंकार चूड़ामणि और विवेक से विभूषित होकर काव्यानुशासन, काव्य प्रकाश से अधिक महत्वशाली हो गया है। काव्य प्रकाश से साहित्य दर्पण का प्रचार अधिक हुआ है। इसके दो कारण हैं—(१) काव्यप्रकाश की भाषा से साहित्य दर्पण की भाषा सरल है और (२) काव्यप्रकाश में नाटकीय तत्वों पर प्रकाश नहीं डाला गया है, जबकि साहित्य दर्पण में है। मेरा ख्याल है, यदि हेमचन्द्र जैन न होते तो काव्यानुशासन का प्रचार काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण से कहीं अधिक होता। समालोचकों का कहना है कि दर्पणकार साहित्यिक मर्म

---

[११] अत्र यथा वयं न मुष्यामहे तथा त्वं जागृहीति विध्यभिधाने रात्रिरत्यन्धकारा, पतिः प्रोषितः, गृहं शून्यम्, अतस्त्वमभयो मत्पार्श्वमागच्छेति विध्यंतरं प्रतीयते। —काव्यानु०, पृ० ३६ (निर्णय सा० प्रका०)

[१२] अत्र गच्छ वा तिष्ठ वेति अविधिनिषेधे "जीविताशा बलवती धनाशा दुर्बला मम" इति वचनात् त्वया विनाऽहं जीवितुं न शक्नोमि, इत्युपक्षेपेण गमन निषेधः प्रतीयते। —काव्यानु०, पृष्ठ ३८ (निर्णय सा० प्रका०)

के प्रकाशन में उतने समर्थ नहीं, जितने कविता करने में, और काव्यप्रकाशकार के बारे में उनका कहना है कि वे शब्दों के प्रयोग में कृपण थे—कम शब्दों में बहुत अर्थ प्रकट करना चाहते थे। यों देखा जाय तो यह मम्मट का गुण है, न कि दोष। आज के समय में जिज्ञासु ग्रन्थ का हृदय थोड़े परिश्रम से ही जानना चाहता है। इस दृष्टि से हेमचन्द्र बहुत सफल हुए हैं। इनका विवेचन प्रामाणिक होने के साथ-साथ सरल भी है।

आचार्य हेमचन्द्र ने 'अप्रस्तुत प्रशंसा' अलंकार का नाम 'अन्योक्ति' रखा है—"सामान्यविशेषे कार्ये कारणे प्रस्तुते तदन्यस्य तुल्ये तुल्यस्य चोक्तिरन्योक्तिः" (काव्यानुशासन, अध्याय ६, पृष्ठ ३०७)। हेमचन्द्र के पूर्ववर्त्तियों में केवल रुद्रट ने इस संज्ञा का उपयोग किया था। भामह, वामन, आनन्दवर्द्धन और मम्मट आदि सभी ने अप्रस्तुत प्रशंसा संज्ञा उपयोग किया था। हेमचन्द्र के बाद के विद्वानों ने भी—'अप्रस्तुत प्रशंसा' संज्ञा का उपयोग किया है किन्तु हिन्दी-साहित्य में प्रायः सर्वत्र 'अन्योक्ति' संज्ञा का उपयोग किया गया है। इसी तरह विद्वज्जन काव्यानुशासन का ध्यान से अवलोकन करें तो और भी ऐसी बहुत सी विशेषताएँ दृष्टिगोचर होंगी।

[क्रमशः

सत्य की उपलब्धि

पूरणचंद सामसुखा

आत्मिक विकास में सत्य की उपलब्धि प्रायः एक ही तरह से होती है। उसे प्रकाश करने की भाषा अलग हो सकती है, विकास की तारतम्यता से कुछ पार्थक्य साधारण दृष्टि में प्रतीत भी हो सकता है, परन्तु मूल में सत्य अपने प्रकृत रूप से प्रतिभास होता है।

जैन आचारांग सूत्र का एक प्रसिद्ध वाक्य है—"जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ" अर्थात् जो एक को—आत्मा को जानता है वह समस्त को जानता है। आत्मा को जानने का अर्थ है, उसे प्रत्यक्ष अनुभव करना। जिन मनुष्य को आत्मा स्व-स्वरूप में अनुभव होती है वह कृतकृत्य हो जाता है। उनके ज्ञान के प्रकाश से समस्त जगत प्रतिभासित हो जाता है। जैसे जैन सूत्र में एक को जानने से समस्त को जानने की बात लिखी है, वैसे उपनिषदादि में भी इसी आशय के वाक्य मिलते हैं। यहाँ उपनिषदादि के वाक्य उद्धृत किये जाते हैं।

वृहदारण्यक उपनिषद् का एक उपाख्यान है जिसमें याज्ञवल्क्य अपनी स्त्री मैत्रेयी से कहते हैं कि :

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो। मैत्रेयी, आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।" २।४।५

अर्थात् आत्मा ही को देखना चाहिये, यथार्थ रूप से जानना चाहिये, विचार करना चाहिये, निरन्तर ध्यान करना चाहिये। अयि मैत्रेयी, आत्मा का दर्शन करने से, विचार करने से यह समस्त जगत् विज्ञात होता है।

छान्दोग्य उपनिषद् में भी इसी आशय की उक्ति है। श्वेतकेतु गुरु के पास से अध्ययन समाप्त करके जब पिता आरुणि के निकट उपस्थित हुए, तब पुत्र को गर्वित व अविनीत देखकर पिता आरुणि ने पुत्र से जिज्ञासा की पुत्र, तुम अपने को समस्त शास्त्र पारंगत समझकर गर्व कर रहे हो, तब क्या तुमने ऐसा ज्ञान प्राप्त किया है—"येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं ममविज्ञानं विज्ञातमिति।" ६।१।६—अर्थात् जिसकी प्राप्ति से समस्त अश्रुत श्रुत हो जाता है, अनालोचित आलोचित हो जाता है, अविज्ञात विज्ञात हो जाता है।

मुण्डकोपनिषद् में भी एक उपाख्यान मिलता है, जिसमें इसी आशय की उक्ति मिलती है। शौनक नाम के एक महर्षि थे। वे एक महाविद्यालय के अधिष्ठाता थे। उनके आश्रम में ८८ हजार ऋषि रहते थे। परन्तु उनको ब्रह्मज्ञान नहीं हुआ था। तब वे हाथ में समिधा लेकर महर्षि अंगिरा की शरण में आये और उनसे कहे कि—"कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातो भवतीति।" १।१।३ अर्थात् हे भगवन्! किसको जानने से यह सर्व (समस्त जगत्) जान लिया जाता है? तब महर्षि अंगिरा ने उन्हें ब्रह्मज्ञान दिया।

गीता में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है: "यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।" ७।२—अर्थात् (हम ऐसा ज्ञान तुमको बतलायेंगे) जिस को जानने से इस संसार में फिर कुछ ज्ञातव्य शेष नहीं रह जाता।

श्री रामकृष्ण परमहंस की एक वाणी इसी आशय की मिलती है, जिसका अनुवाद दिया जाता है। यह प्रसंग उस समय का है जब बंगाल के प्रसिद्ध औपन्यासिक श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी परमहंसजी से मिलने गये थे। "तुम लोगों को वही एक ही बात है। मेरी समझ में भगवान् आगे उसके बाद और सब। वे ही ज्ञान, वे ही ज्ञाता। उनको पुकारने से, उन्हीं के शरणागत होने से, उन्हीं की कृपा से ज्ञानरूपी सूर्य का उदय होता है। फिर अज्ञान अन्धकार नहीं रहता। दीपक जलने से हजारों वर्षों का अन्धकार भरा घर क्षणमात्र में ही आलोकित हो जाता है। दस्यु रत्नाकर बाल्मीकि हुए, रामायण लिखा। ज्ञान कहाँ से मिला? पुस्तक पढ़कर? नहीं, मिला ध्यान करने से। किसका ध्यान? राम का—परब्रह्म राम का। उन्हीं का नाम जप किया? नहीं, जप करने का मंत्र था "मरा"। राम को जानने के लिये, उनकी लीला समझने के लिये, रामायण के लेखक ने जप किया "मरा"। "मरा" का अर्थ क्या? "म" अक्षर का अर्थ 'ईश्वर' और "रा" अक्षर का अर्थ "जगत्"—अर्थात् ईश्वर का ऐश्वर्य। पहले "म" पीछे "रा"। "म" को जानने से "रा" को भी समझा जाता है। एक को जानने से ही सबों को जाना जाता है। एक ही का मूल्य है। एक के पीछे ५० शून्य लगाने से बहुत हो जाता है, परन्तु एक को निकाल दो, केवल शून्य ही रह गया जिसका कोई मूल्य नहीं।"

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

तब इन्द्र ने आभियोगिक नामक देवताओं को असंभाव्य और अप्रतिम एक विमान प्रस्तुत करने का आदेश दिया। स्वामी की आज्ञा पालनकारी उन देवताओं ने उसी मुहूर्त्त में एक विमान प्रस्तुत किया। वह विमान सहस्र-सहस्र रत्न स्तम्भों के किरण प्रवाह से आकाश को पवित्र कर रहा था। गवाक्ष मानों उसके नेत्र थे, बड़ी-बड़ी ध्वजाएँ जैसे उसके हाथ थे, वेदिका दाँत थी जिससे वह स्वर्णकुम्भ की भाँति प्रतीत होती थी। इससे लगता वह हँसता है। वह विमान पाँच सौ योजन ऊँचा था, एक लक्ष योजन विस्तृत था, उस विमान पर चढ़ने के लिए कान्ति से तरंगित तीन सीढ़ियाँ थीं। उन्हें देखकर हिमवन्त पर्वत की गंगा, सिन्धु और रोहितास्या नदी का भ्रम होता था। उस सीढ़ी के आगे विविध वर्ण के रत्नों का तोरण था। वह इन्द्रधनुष की भाँति मनोहारी लगता था। उस विमान के मध्य आलिंगी मृदंग की तरह वर्तुल और समतल कुट्टिम थी जो चन्द्रमण्डल, दर्पण या उत्तम दीपिका की भाँति उज्ज्वल और प्रभा-सम्पन्न थी। उस कुट्टिम-जड़ित रत्नमय शिला की किरण-जाल दिवालों पर लगे चित्रों पर इस प्रकार पड़ रही थी जैसे वे यवनिकाएँ रच रहीं हों। उनमें अप्सराओं से पुत्तलिका विभूषित प्रेक्षा मण्डप था। उस प्रेक्षा मण्डप के बीच कमल कर्णिका की भाँति सुन्दर माणिक्यमयी एक पीठिका थी। वह पीठिका लम्बाई और चौड़ाई में आठ योजन एवं उच्चता में चार योजन थी। वह इन्द्र की लक्ष्मी की शय्या-सी लग रही थी। उस पर एक सिंहासन था जो समस्त ज्योतिष्क का तेजपुंज-सा था। उस सिंहासन पर अपूर्व सुन्दर विचित्र रत्नों से खचित एवं स्वप्रभा में आकाश व्याप्तकारी एक विजय वस्त्र देदीप्यमान था। उस वस्त्र के मध्य हस्ती के कर्ण पर जिस प्रकार वज्रांकुश रहता है उसी प्रकार वज्रांकुश था और लक्ष्मी के हिंडोले में जैसे कुम्भिक जातीय मुक्तामाला रहती है वैसी ही मुक्तामालाएँ थीं। मुक्तामालाओं के आस-पास गंगा के सैकत की भाँति उससे अर्द्ध-विस्तार युक्त अर्द्ध कुम्भिक मुक्तामालाएँ सुशोभित थीं। उन मुक्तामालाओं के स्पर्श सुख को पाने के लोभ में जैसे पाँव उठ ही नहीं रहा हो इस प्रकार उसे मृदु-मृदु

आन्दोलित कर वायु प्रवाहित हो रहा था। उसी मुक्तामाला के मध्य संचरित होने से वायु एक कर्ण सुखकर मधुर ध्वनि कर रही थी। इससे लगता मानों स्तुति पाठक इन्द्र का निर्मल यशोगान कर रहा है।

उस सिंहासन के वायव्य और उत्तर दिशा के मध्य और उत्तर एवं पूर्व दिशा के मध्य चौराशी हजार सामानिक देवताओं के भद्रासन थे। वे देवता स्वर्ग लक्ष्मी के किरीट रूप थे। पूर्व दिशा में आठ अग्रमहिषियों के आठ आसन थे। वे सहोदर की भाँति आकार-प्रकार में सुशोभित थे। दक्षिण और पूर्व दिशा के मध्य अभ्यंतर सभा के सभासदों के बारह हजार सिंहासन थे। दक्षिण दिशा में मध्य सभा के चौदह हजार सभासदों के चौदह हजार सिंहासन थे। दक्षिण और पश्चिम के मध्य बाह्य पर्षदों के सोलह हजार देवताओं के सोलह हजार सिंहासन थे। पश्चिम दिशा में जैसे एक अन्य के प्रतिबिम्ब से सात हजार सेना के सात सेनापति देवता के सात आसन थे। मेरु पर्वत के चारों ओर जैसे नक्षत्र शोभा पाते हैं उसी प्रकार शक्र के सिंहासन के चारों ओर चौराशी हजार आत्मरक्षक देवता के चौराशी हजार आसन थे। इस प्रकार परिपूर्ण विमान की रचना कर आभियोगिक देवताओं ने इन्द्र को संवाद दिया। तब इन्द्र ने उसी मुहूर्त्त में उत्तर वैक्रिय रूप धारण किया। कारण इच्छा के अनुरूप रूप धारण करना देवताओं के लिए स्वाभाविक है।

फिर इन्द्र दिक्लक्ष्मियों के समान आठ पट्ट-महिषियों सहित गन्धर्व और नाट्य सैनिकों के कौतुक देखते-देखते सिंहासन की प्रदक्षिणा देकर पूर्व दिशा की सीढ़ी से स्वअभिमान की भाँति उच्च सिंहासन पर आरोहण किया। माणिक्य की दीवालों पर उनका प्रतिबिम्ब पड़ने से ऐसा लगता था जैसे उन्होंने हजार शरीर धारण किया हो। सौधर्मेन्द्र पूर्वाभिमुख होकर अपने आसन पर जा बैठे। फिर मानों उन्हीं के अन्य रूप हों ऐसे सामानिक देव उत्तर दिशा की सीढ़ी से चढ़कर अपने-अपने आसनों पर बैठ गए। तब अन्य देवता दक्षिण दिशा की सीढ़ियों से चढ़कर अपने-अपने आसन पर जा बैठे। स्वामी के समीप अपने-अपने आसनों का उल्लंघन नहीं होता।

सिंहासन पर बैठे शचिपति इन्द्र के सम्मुख दर्पण आदि अष्ट मांगलिक और माथे पर चाँद-सा उज्ज्वल छत्र शोभित होने लगा। दोनों ओर से चामर इस प्रकार डुलाए जा रहे थे मानों वे दोनों चलमान हंस हों। पर्वत जैसे निर्झर से शोभित होता है उसी प्रकार छोटी-छोटी पताकाओं से सुशोभित एक हजार योजन उच्च इन्द्रध्वज विमान के आगे सुशोभित था। उस समय कोटि सामानिक देवताओं से परिवृत इन्द्र इस प्रकार सुशोभित था जैसे नदी

प्रवाह से परिवृत समुद्र शोभा पाता है। अन्यान्य विमानों से परिवृत वह विमान इस भाँति शोभायमान था जैसे अन्य चैत्यों से परिवृत मूल चैत्य शोभित होते हैं। विमानों की सुन्दर माणिक्यमय दीवालों पर एक का अन्य पर प्रतिबिम्ब पड़ने से लगता था मानों समस्त विमान एक दूसरे के मध्य समाहित हो गया है।

चारणों की जय-जयकार से, दुंदुभि की आवाज से, गन्धर्व और नाट्य वाहिनियों के बाजों से सभी दिशाओं को प्रतिध्वनित करता वह विमान इन्द्र की इच्छा से सौधर्म देव लोक के मध्य होते हुए आकाश को विदारित कर चलना प्रारम्भ किया। सौधर्म देवलोक की उत्तर दिशा से तिर्यक गति में उस विमान ने नीचे उतरना आरम्भ किया। विमान एक लक्ष योजन विस्तृत होने से वह जम्बूद्वीप का आच्छादन-सा प्रतीत हो रहा था। उस समय देवतागण एक दूसरे को इस प्रकार बोलते हुए चलने लगे—हे हस्तिवाहन, दूर हो जाओ। मेरा सिंह तुम्हारे हस्ती को सहन नहीं करेगा। हे अश्वारोही, तुम जरा दूर हट जाओ। कारण मेरा ऊँट क्रुद्ध है। हे मृगवाहन, तुम पास मत आ जाना नहीं तो मेरा बाघ उस पर आक्रमण कर बैठेगा। हे सर्प वाहन, तुम अन्यत्र चले जाओ नहीं तो मेरा वाहन गरुड़ उसे भक्षण कर सकता है। हे सोम्य, मेरे सम्मुख आकर मेरी गति को क्यों अवरुद्ध कर रहे हो? मेरे और तुम्हारे विमान को टकराना चाहते हो क्या? हे भद्र, मैं पीछे रह गया हूँ। स्वर्गाधीप तीव्र गति से चले जा रहे हैं, इसलिए मेरा विमान यदि तुम्हारे विमान को धक्का लगाये तो क्रोध मत करना। पर्व के दिन संकीर्ण होते हैं। अर्थात् उस दिन भीड़ होती ही है। इस प्रकार इन्द्र के अनुगामी सौधर्म देवलोक के देवताओं के मध्य उत्सुकता के लिए कोलाहल होने लगा। उसी समय इन्द्रध्वज शोभित वृहत् विमान आकाश से इस प्रकार उतरने लगा जैसे समुद्र में तरंग-शिखर से नौका उतरती है। मेघमण्डल में आच्छादित स्वर्ग को नीचा कर वृक्ष के मध्य से जैसे हस्ती जाता है उसी प्रकार नक्षत्र चक्र के मध्य से आकाश से उतर कर वह विमान वायु वेग से असंख्य द्वीप समुद्र को अतिक्रम कर नन्दीश्वर द्वीप में जा पहुँचा। पण्डित जैसे ग्रन्थ संक्षेप करते हैं उसी प्रकार इन्द्र ने उसी द्वीप के दक्षिणार्द्ध के मध्य स्थित रतिकर पर्वत के ऊपर उस विमान को छोटा बनाया। फिर और अनेक द्वीप और समुद्र अतिक्रम कर विमान को और छोटा करते-करते इन्द्र जम्बूद्वीप के दक्षिण भरतार्द्ध में आदि तीर्थंकर के जन्म स्थान में पहुँचे। सूर्य जैसे मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा देता है उसी प्रकार इन्द्र ने भी—उस विमान में स्थित होकर भगवान

के सूतिका गृह की प्रदक्षिणा दी, फिर घर के कोने में जैसे धन रखा जाता है उसी प्रकार ईशान कोन में उस विमान को स्थापित किया।

महर्षि जिस प्रकार मान से अवतरण करते हैं उसी प्रकार इन्द्र विमान से उतरकर भगवान के निकट गए। भगवान को देखकर देवों में अग्रणी शक्र ने पहले उन्हें प्रणाम किया। कारण स्वामी के दर्शन मात्र से उन्हें प्रणाम करना उपहार देना है। तदुपरान्त माता सहित प्रभु को प्रदक्षिणा दे कर उन्होंने पुनः प्रणाम किया। भक्ति में पुनरूक्ति दोष कहाँ? देवताओं ने जिनका मस्तक अभिषेक किया है ऐसे इन्द्र ने भक्ति के अतिशय में दोनों हाथों से शिशु को मस्तक पर लेकर माता मरुदेवी से कहा—"हे रत्नगर्भा, जगत प्रकाशक को प्रकाशित कारिणी, हे जगन्माता, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप धन्य हैं। आप पुण्यवती हैं। आपका जन्म सार्थक है। आप उत्तम लक्षण युक्त त्रिलोक की पुत्रवती रमणियों के मध्य पवित्र हैं। कारण धर्मोद्धारकारियों में अग्रणी, आच्छादित मोक्ष मार्ग के प्रकाशक भगवान आदि तीर्थंकर को आपने जन्म दिया है। हे देवी, मैं सौधर्म देवलोक का इन्द्र आपके पुत्र अर्हत् का जन्मोत्सव करने आया हूँ। अतः आप मुझसे डरें नहीं।"

फिर इन्द्र ने अवस्वापिनी निद्रा में माता मरुदेवी को निद्रित किया। उनके पास उनके पुत्र का प्रतिरूप रखा और स्वयं पाँच रूप धारण किए। कारण जो शक्तिशाली हैं वे अनेक रूप में प्रभु-भक्ति की इच्छा रखते हैं। उन्हीं पाँच रूपों में एक रूप से भगवान के निकट जाकर नम्रता से प्रणाम कर बोले—"हे भगवन्, आज्ञा दीजिए।" ऐसा कहकर कल्याणकारी भक्तिमय इन्द्र अपने गोशीर्ष चन्दन विलेपित दोनों हाथों से जैसे मूर्त्तिमान कल्याण को ही उठाया हो इस प्रकार भगवान को उठाया। दूसरे रूप से जगत् के ताप को नाश करने पाले छत्र के समान जगत्पति के मस्तक के पीछे खड़े होकर छत्र धारण किया। तीसरे-चौथे रूप में स्वामी की दोनों बाहुओं की भाँति दो रूप से सुन्दर चँवर धारण किया। और पंचम रूप में मुख्य द्वारपाल की भाँति वज्र धारण कर भगवान के अग्रभाग में अवस्थित हो गए। फिर जय-जय शब्द से आकाश गुंजित करते हुए देवताओं द्वारा परिवृत होकर आकाश की ही भाँति निर्मल मना इन्द्र ने पाँचों रूपों से आकाश पथ पर चलना प्रारम्भ किया। तृषातुर पथिक की दृष्टि जिस प्रकार अमृत सरोवर पर पड़ती है उसी प्रकार उत्सुक देवताओं की दृष्टि भगवान के अद्भुत रूप पर पड़ी। भगवान के अद्भुत रूप को देखने के लिए अग्रगामी देवताओं ने चाहा उनके नेत्र पीछे हो जाएँ। दोनों पार्श्व के देवता स्वामी के दर्शन से तृप्त न होने के कारण इस

प्रकार स्तम्भित हो गए हैं कि नेत्रों को दूसरी ओर घुमा ही नहीं पा रहे हैं। पीछे के देवता भगवान को देखने के लिए आगे आना चाह रहे हैं इसलिए वे अपने प्रभु मित्रों आदि सभी को छोड़कर आगे बढ़ गए। देवराज भगवान को हृदय के समीप रखकर मानों हृदय में धारण कर ही मेरु पर्वत पर ले गए। वहाँ पाण्डुकवन में दक्षिण चूलिका के ऊपर निर्मल कान्ति सम्पन्न अति पाण्डुक नामक शिला खण्ड पर अर्हंत स्नात्र योग्य सिंहासन पर पूर्वदिगाधिपति इन्द्र आनन्दमय चित्त से प्रभु को गोद में लेकर बैठ गए।

जिस समय सौधर्मेन्द्र मेरु पर्वत पर आए उस समय महाघोषा नामक घण्टे के नाद से प्रभु का जन्म अवगत कर अट्ठाइस लाख देवताओं द्वारा परिवृत होकर त्रिशूलधारी वृषभवाहन ईशान कल्पाधिपति ईशानेन्द्र आभियोगिक देवताओं द्वारा निर्मित पुष्पक विमान में बैठकर दक्षिण दिशा से चलकर तिर्यक गति से नन्दीश्वर द्वीप में जाकर उस द्वीप के ईशान कोण स्थित रतिकर पर्वत पर सौधर्मेन्द्र की भाँति अपने विमान को छोटा कर भक्ति भरे हृदय से भगवान के समीप आए।

सनत्कुमार नामक इन्द्र अपने बारह लक्ष देवताओं के साथ सुमन नामक विमान में बैठकर वहाँ आए।

महेन्द्र नामक इन्द्र आठ लाख विमानवासी देवताओं सहित श्री वत्स नामक विमान में बैठकर मन की तरह द्रुतगति से वहाँ आए।

ब्रह्मेन्द्र नामक इन्द्र चार लाख विमानवासी देवताओं सहित नन्दावर्त नामक विमान में भगवान के निकट आए।

लान्तक नामक इन्द्र पचास हजार विमानवासी देवताओं सहित कामगम नामक विमान में बैठकर जिनेश्वर के समीप आए।

शुक्र नामक इन्द्र चालीस हजार विमानवासी देवताओं सहित प्रीतिगम नामक विमान में बैठकर भगवान के पास पहुँचे।

सहस्रार नामक इन्द्र छः हजार देवताओं के साथ मनोरम नामक विमान में बैठकर प्रभु के निकट आए।

आनत प्राणत देवलोक के इन्द्र चार सौ विमानवासी देवताओं सहित विमल नामक विमान में बैठकर आए।

अरणाच्युत देवलोक के इन्द्र तीन सौ विमानवासी देवताओं सहित अतिवेगवान सर्वतोभद्र विमान में बैठकर आए।

उसी समय रत्नप्रभा पृथ्वी के भीतर रहने वाले भुवनपति और व्यंतर देवताओं के इन्द्र के आसन भी कंपित हुए। चमरचंचा नामक नगर में

सुधर्मा सभा में चमर नामक सिंहासन पर चमरासुर बैठे थे। उन्होंने अवधि ज्ञान से भगवान-जन्म जानकर अपने द्रुम नामक सेनापति को समस्त देवताओं को अवगत करवाने के लिए ओघघोषा नामक घण्टा बजाने को कहा। फिर वे चौंसठ हजार सामानिक देवता, तेंतीस त्रायत्रिंशक देवता, चार लोकपाल, पाँच अग्र महिषी, आभ्यंतर, मध्य और बाह्य तीनों सभा के देवता सात प्रकार की सैन्य और सात सेनापति, चारों दिशाओं के चौसठ-चौसठ हजार आत्म-रक्षक देव एवं अन्य उत्तम ऋद्धि सम्पन्न असुर कुमार देवताओं द्वारा परिवृत होकर आभियोगिक देवताओं द्वारा तत्काल निर्मित पाँच सौ योजन ऊँचे वृहत् ध्वजाओं से सुशोभित और पचास हजार योजन विस्तृत विमान में बैठकर भगवान का जन्मोत्सव मनाने के लिए निकल पड़े। चमरेन्द्र भी शक्रेन्द्र की भाँति अपने विमान को पथ में छोटा कर भगवान के आगमन से पवित्र मेरुपर्वत पर पहुँचे।

वलिचंचा नामक नगर के इन्द्र बलि ने भी महौघस्वरा नामक वृहत् घण्टा बजवाया। उनके महाद्रुम नामक सेनापति के आमंत्रण पर आए हुए साठ हजार सामानिक देवता, उसके चार गुणा अर्थात् २४० ००० अंग रक्षक देवता और अन्य त्रायत्रिंशक इत्यादि देवताओं सहित वे भी चमरेन्द्र की भाँति अमन्द गति से आनन्द के मन्दिर रूप मेरुपर्वत के शिखर पर आए।

नागकुमारों के धरण नामक इन्द्र ने मेघस्वरा नामक घण्टा बजवाया। उनके छः हजार पदातिक सेना के सेनापति भद्रसेन के कहने से आए हुए छः हजार सामानिक देवता और उनके चार गुणा अर्थात् २४००० आत्म रक्षक देवता अपनी छः पटरानियों और अन्य नागकुमार देवताओं सहित इन्द्रध्वज से सुशोभित पाँच सौ हजार योजन विस्तृत और अढ़ाई सौ योजन ऊँचे विमान में बैठकर भगवान के दर्शनों के लिए उत्सुक होकर क्षणमात्र में ही मन्दराचल पर्वत के शिखर पर आए।

भूतानन्द नामक नागेन्द्र ने मेघस्वरा नामक घण्टा बजवाया और दक्ष नामक सेनापति द्वारा सामानिक देव आदि को बुलवाया। फिर वे आभियोगिक देवताओं द्वारा निर्मित विमान में सबके साथ बैठकर तीन लोक के नाथ से सनाथ बना है इस प्रकार के मेरुपर्वत पर पहुँचे।

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अमर भारती || मई १९८२

उपाध्याय श्री अमर मुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'तीर्थंकर महावीर और उनकी साधना' (श्री रतन मुनि), 'मुनिवरों का व्याख्यान' (यू० भी० कोठारी), 'पहाड़ी बिहार शरीफ की' (डा० आर० इशरी अरशद)।

कुशल-निर्देश || मई १९८२

इस अंक में है 'श्री सहजानंदघन जी महाराज का श्री आनन्दघन विजय जी को दिया पत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'बाँठिया फाउन्डेशन' (गुण सुन्दरी, राजकुमारी बाँठिया), 'आर्याश्री सुव्रतश्री जी महाराज' (कमला बाई डाकलिया), 'नाम विचक्षण, व्यक्तित्व विचक्षण' (अगरचन्द नाहटा), 'कल्याण मन्दिर स्तोत्र पद्यानुवाद' (भँवरलाल नाहटा)।

जैन जर्नल || अप्रेल १९८२

इस अंक में है 'Homage to the Perfect One' (Howard Banow 'Abhay'), 'From an Unknown Star' (Paresh Chandra Dasgupta), 'Thou Shalt Not Kill' (Percy Hill), 'Lord Mahavira' (V. P. Jain), 'Written at Panitabhumi' (Ganesh Lalwani), 'Avarice' (Frank Mansela), 'To the Little Animals' (Tara Chand Pandia), 'Open to Them' (Clare Rosenfield 'Brahmi'), 'Gate of Salvation' (L. N. Sahu), 'Tirthankara' (Milford E. Shields), 'The Eternal Law' (Anoma Muhinda Thera), 'Conversactions, Sweet in Jaina Truth' (Leona Smith Kremser), 'The Renunciation of Nemi' (Ganesh Lalwani), 'Half a Tale' (Mukund Lath), 'Prince Nemi's Longing for Eternity : Lalwani's Opera Nemi Pravajya' (Paresh Chandra Dasgupta).

श्रमण || मई १९८२

इस अंक में है 'आचार्य मानतुंग सूरि विरचित भक्तामर काव्य : हिन्दी पद्यानुवाद' (राजमल पवैया), 'धर्म परिवर्तन : श्रमण धर्मों की भूमिका और निदान' (महेन्द्र कुमार फुसकेले), 'साधु मर्यादा क्या ? कितनी ?' (सौभाग्यमल जैन), 'महावीर का संयम और उनका साधनामय जीवन' (सविता जैन),

'प्राणप्रिय काव्य का रचना काल, श्लोक संख्या और सम्प्रदाय' (अगरचन्द नाहटा)।

सम्बोधि ॥ अप्रैल १९८०-जनवरी १९८१

इस अंक में है 'Haribhadra's Synthesis of Yoga' (Shanti Lal M. Desai), 'The Buddhist and Jaina Concept of Man and Society as Revealed in Their Religious Literature' (Padmanabh S. Jaini), 'The Main Features of Mahavira's Contributions' (Suzuko Ohira), 'A Note on Ayaranga Sutta 1.2.6.3' (Michihiko Yajima), 'Uttarajjhayana and Socio-Religious Formalism' (Ram Prakash Poddar), 'Some Special Aspects of Jaina Philosophy as a School of Indian Philosophy' (Arvind Sharma), 'A Paramara Sculpture in the British Museum : Vagdevi or Yakshi Ambika ?' (Kirit Mankodi), 'जैन कर्म सिद्धान्त : बन्धन और मुक्ति की प्रक्रिया' (सागरमल जैन), 'जैन यक्षी अजिता या रोहिणी का प्रतिमा निरूपण' (मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी), 'पाइय-सद्द-महण्णवो में अनुपलब्ध वसुदेवहिण्डी की शब्दावली (२)' (के० आर० चन्द्र), 'राणकपुर का प्राचीनतम् उल्लेख' (राम वल्लभ सोमानी), 'महोपाध्याय यशोविजय जी महाराज नी रचेली कर्म प्रकृति टीका नी एक अमूल्य हस्तप्रति' (मुनि शीलचन्द्र विजय), 'अज्ञात कर्तृक श्री न्याय सिद्धान्त प्रवेशकन्थिका' (सं० मुनि शीलचन्द्र विजय), 'पंचाख्यान के संशोधक पूर्णभद्र सूरि खरतर पूर्णभद्र नहीं थे' (अगरचन्द नाहटा), 'कविवर नय सुन्दर की एक अज्ञात रचना नेमिनाथ वसंत विलास' (अगरचन्द नाहटा), 'आ० जिनप्रभ सूरि विरचित अंतरंग रास' (सम्पादक० र० म० शाह)।

Vol. VI No. 2 : Titthayara : June 1982
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD
CALCUTTA-700001